साहित्य अकादेमी
महत्तर सदस्यता
SAHITYA AKADEMI
FELLOWSHIP

शंख घोष

SANKHA GHOSH

शंख घोष
SANKHA GHOSH

शंख घोष, जिन्हें साहित्य अकादेमी अपने सर्वोच्च सम्मान, महत्तर सदस्यता से विभूषित कर रही है अपने आप में बाङ्ला साहित्य की एक संस्था हैं, जिनका रचनाकाल पिछले पाँच दशकों में फैला हुआ है। अपने विश्वासों पर दृढ़ बने रहनेवाले श्री घोष गद्य और काव्य दोनों में निपुण हैं और अपने समय के सर्वाधिक प्रतिष्ठित बाङ्ला लेखक हैं। एक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् के रूप में आपने कवियों और गद्यकारों दोनों की ही साहित्यिक अभिव्यक्ति को एक रूप देने में सहायता की है, जो लगभग दो पीढ़ियों से आप अनुसरण कर रहे हैं।

शंख घोष का जन्म 6 फ़रवरी 1932 को चाँदपुर, त्रिपुरा (अब बाङ्लादेश) में हुआ। जाने-माने प्रधानाध्यापक और बाङ्ला वैयाकरण स्व. मणीन्द्र कुमार और अमलबाला घोष के पुत्र शंख का शैक्षिक जीवन मेधावी रहा है। अविभाजित बंगाल के कलकत्ता विश्वविद्यालय की मैट्रिकुलेशन परीक्षा (1947) में सात से छह विषयों में योग्यताक्रम में आप छठे स्थान पर रहे और लोकशिक्षा संसद परीक्षा बोर्ड द्वारा संचालित विश्वभारती की आद्य भारती परीक्षा (1946) में आपको प्रथम स्थान प्राप्त हुआ। आप प्रतिष्ठित प्रेसिडेंसी कॉलेज, कोलकाता के छात्र रहे, जहाँ से आपने इंटरमीडिएट, कला परीक्षा (1949) उत्तीर्ण की। बाङ्ला में बी.ए. (ऑनर्स, 1951) परीक्षा में आपको बंकिमचन्द्र पदक प्राप्त हुआ और एम.ए. (बाङ्ला, 1954) में आपने प्रथम स्थान प्राप्त किया।

बंगबासी कॉलेज, कोलकाता (1955), जंगीपुर कॉलेज (1955-56) और बहरामपुर गर्ल्स कॉलेज (1956-57) में कुछ समय अध्यापन करने के बाद आप सिटी कॉलेज, कोलकाता (1957-65) आ गए। वहाँ एक निपुण शिक्षक के रूप में आपकी ख्याति फैलने लगी। 1965 में आप जादवपुर विश्वविद्यालय आ गए जहाँ से आप 1992 में सेवानिवृत्त हुए। साठ वर्ष के बाद सेवा विस्तार के सभी अनुरोधों को आपने ठुकरा दिया। आज एक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय के रूप जादवपुर विश्वविद्यालय की जो ख्याति है, उसका बहुत कुछ श्रेय आपके कक्षा-शिक्षण के कारण है, एक अद्भुत कर्म जो अब अतीत की बात हो चली है। रवीन्द्रनाथ पर आप निश्चित रूप से सबसे बड़े विद्वान हैं। आपने कुछ समय के लिए (1989-90) विश्वभारती, शांतिनिकेतन स्थित टैगोर मेमोरियल रिसर्च इंस्टीट्यूट, रवीन्द्र भवन के निदेशक के रूप में भी काम किया। बीमारी की वजह से आप वहाँ अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर सके।

धीरे-धीरे शंख घोष की ख्याति फैलने लगी और उन्हें जगह-जगह से आमंत्रित किया जाने लगा। 1967-68 के अंतर्राष्ट्रीय सृजनात्मक लेखन

Sankha Ghosh (b 06 February 1932; Chandpur, Tripura, now in Bangladesh) is an institution by himself in Bengali literature spanning nearly the last five decades. Always maintaining a low profile yet firm convictions, equally deft in prose and verse, he is decidedly the most considerable Bengali writer of his times; considerable both for his assertive stand on values concerning life and for the masterly delicate nuances of his poetic idiom and prose style. An academician of high repute, he has also helped to shape the literary expression of poets as well as prose writers following him for nearly two generations.

Son of the renowned Headmaster and Bengali grammarian, late Manindrakumar and Amalabala Ghosh, Sankha Ghosh had a brilliant academic career. He stood sixth in the order of merit with Letters in six subjects out of seven, in Calcutta University's Matriculation examination covering the whole of undivided Bengal (1947) and first in Visva-Bharati's Adyabharati conducted by the Lokasiksha Samsad Examination Board (1946). A product of the prestigious Presidency College, Kolkata, where he did his Intermediate Arts (1949), he won the coveted Bankimchandra Medal for his accomplishment in Bachelor of Arts examination with Honours in Bengali (1951) and topped the list in the Master of Arts also in Bengali (1954).

After short stints at Bangabasi College, Kolkata (1955), Jangipur College (1955-56) and Baharampur Girls' College (1956-57), he settled at the City College, Kolkata (1957-65). His reputation as an inspiring teacher spread from this institution which ultimately took him to the Jadavpur University in 1965 and from there he retired in 1992, firmly setting aside all requests for extension beyond the age of sixty. What now is a university of excellence owes much of its academic fame to his legendary classroom teaching, a feat now becoming increasingly a matter of the past. The unquestionably greatest living authority on Tagore, he had also served briefly as the Director of Rabindra-Bhavana, the Tagore Memorial Research Institute at Visva-Bharati, Santiniketan (1989-90), when his tenure was cut short by illness.

Sankha Ghosh's growing reputation got him invited from far and near. The first of these came from the University of

कार्यक्रम के लिए आपको आयोवा विश्वविद्यालय (अमेरिका) द्वारा आमंत्रित किया गया। आपको ऐसे दूसरे कई आमंत्रण मिले : दिल्ली विश्वविद्यालय में विज़िटिंग प्रोफ़ेसर (1974), विश्वभारती, शांतिनिकेतन में फ़ेलो (1978), वहीं पर राइटर-इन-रेजिडेंस (1948), भारत भवन, भोपाल में पोएट-इन-ट्रांसलेशन (1983), भारतीय उच्चतर संस्थान, शिमला में पोएट-इन-रेजिडेंस (1987-88) और मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार में इमेरिटस फ़ेलो (1993-1995)। लगभग एक दशक तक (1994-2004) तक आपने रवीन्द्रनाथ की संपूर्ण कृतियों का संपादन किया जिसे पश्चिम बंग सरकार ने प्रकाशित किया।

यद्यपि शंख घोष ने कभी किसी पुरस्कार की चिन्ता नहीं की लेकिन उन्हें बराबर पुरस्कार मिलते रहे। इनमें से प्रमुख हैं : नक्षत्र पुरस्कार (1976; *कविता 'संगिनी' के लिए*), नरसिंह दास बेंगाली प्राइज़ (1977; *मूर्ख बड़ो, सामाजिक नय* के लिए), साहित्य अकादेमी पुरस्कार (1977; *बाबरेर प्रार्थना* के लिए), आसान प्राइज़ (1982; *प्रहार जोड़ा त्रिताल* के लिए), शिरोमणि पुरस्कार (1988; *कवितार मुहूर्त* के लिए), रवीन्द्र पुरस्कार (1989; *धूम लेगेछे हृतकमले*), संपूर्ण कृतित्व हेतु मतिलाल पुरस्कार (1990), टैगोर रिसर्च इंस्टीट्यूट से रवीन्द्र तत्वाचार्य की उपाधि (1992), कमल कुमारी फ़ाउंडेशन पुरस्कार (1992), भारतीय भाषा परिषद का स्वर्णांचल पुरस्कार (1994; *गांधर्व कविता गुच्छ* के लिए) महत्त्वपूर्ण साहित्य सेवा के लिए जोशुआ पुरस्कार (1997), देशिकोत्तम, विश्वभारती (1997-98), सरस्वती सम्मान (1998; *गांधर्व कविता गुच्छ* के लिए), साहित्य अकादेमी अनुवाद पुरस्कार (1999; *रक्त कल्याण के लिए*), गंगाधर मेहर पुरस्कार (2002) और साहित्यिक योगदान के लिए अन्नदाशंकर स्मारक पुरस्कार (2004)।

शंख घोष बहुसर्जक नहीं हैं। आप अपनी कविता 'यमुनावती' के कारण चर्चा में आए जो कि 1951 के खाद्य आंदोलन के दौरान पुलिस की गोलीबारी में एक ग्रामीण लड़की की मृत्यु से प्रेरित थी। आपकी रचनाओं में सामाजिक विरोध का स्वर सदा से मुखर रहा है। गुणवत्ता के प्रति अतिशय सजग और काव्य-प्रेरणा की उचित अंतःलालसा के प्रति ईमानदार शंख घोष की काव्य सर्जना आपके कार्यजीवन के प्रसार के समानुपातिक नहीं है। दो खंडों में प्रकाशित *कविता संग्रह* और सात खंडों में प्रकाशित *गद्य संग्रह* के अतिरिक्त, आपके 20 कविता-संग्रह हैं, जिनमें दो अनूदित कृतियाँ हैं। आपकी पच्चीस गद्य कृतियाँ प्रकाशित हैं। गिरीश कार्नाड के *हयवदन* और *रक्त कल्याण* के अलावा दस बाल कृतियाँ प्रकाशित हैं। *रवीन्द्र रचनावली* के बादवाले खंडों के अतिरिक्त जिसे उन्होंने अकेले ही संपादित किया है, आपने एक दर्जन से अधिक कृतियों का संपादन किया है। इनमें से दो खंड रवीन्द्र नाथ की असंकलित रचनाओं का है। अंतिम खंड जो स्थायी महत्त्व का है, रवीन्द्रनाथ की कृतियों से संबंधित सूचनाओं का है।

उत्तर रवीन्द्रनाथ कालीन बाङ्ला साहित्य के लिए आपने कविता के सच को पुनर्व्याख्यायित किया है। आपकी कविताएँ मानवीय संवेदना के आधारभूत तारों को झंकृत करती है। आपका मंद स्वर सैकड़ों वक्तव्यों से अधिक प्रभावशाली है। एक बार पढ़ने पर ये कविताएँ पाठकों की चेतना पर इस तरह छा जाती हैं कि उनके प्रभाव से बच पाना मुश्किल होता है। आमतौर पर आपको पाँचवें दशक का कवि माना जाता है, लेकिन आप किसी विशेष साहित्यिक गुट अथवा अपने समय की किसी प्रवृत्ति विशेष से नहीं जुड़े। अपनी परिपक्वता और संतुलन के साथ आपने साहित्यिक उदारता

Iowa's (USA) International Creative Writing Program for the year 1967-68. Several visiting assignments were extended in honour of him: Professor at Delhi University (1974), Fellow at Visva-Bharati, Santiniketan (1978) and a Writer-in-Residence at the same University (1984), a Poet-in-Translation programme at Bharat-Bhavan, Bhopal (1983), a Poet-in-Residence at the Indian Institute of Advanced Study, Shimla (1987-88) and finally an Emeritus Fellow of the Ministry of Human Resource Development, Government of India between 1993 and 1995. For nearly a decade (1994-2004) he has edited and has seen through its completion, the entire works of Tagore published by the Government of West Bengal.

Though Sankha Ghosh has never cared for any prize, these have come in showers on him. Even a select list might run long: Nakshatra Puraskar (1976; specifically for the poem "Sangini"), Narasingdas Bengali Prize (1977; for *Murkha bado, samajik nay*), Sahitya Akademi Award (1977; for *Babarer prarthana*), Asan Prize (1982; for *Prahar joda trital*), Siromani Puraskar (1988; for *Kavitar muhurta*), Rabindra Puraskar (1989; for *Dhum legeche hrtkmale*), Motilal Puraskar for lifetime achievement (1990), the title of *Rabindra-tatvacarya* from Tagore Research Institute (1992), Kamalkumari Foundation Award for Culture (1992), Svarnancal Puraskar from Bharatiya Bhasha Parishad (1994; for *Gandharva kavitaguccha*), Joshua Award for distinguished literary career (1997), Desikottama, Visva-Bharati, 1997-98, Saraswati Samman (1998; for *Gandharva kavitaguccha*), Sahitya Akademi Translation Prize (1999; for *Raktkalyan*), Gangadhar Meher Prize (2002) and so far the last, Annadashankar Memorial Prize (2004) for literary contributions.

Sankha Ghosh has not been a very prolific writer. He shot into eminence with his poem "Yamunavati" inspired by the death of a mofussil girl killed in police firing during the Food Movement of 1951. The issue of social protest has been a constant theme in his writings ever since. Extremely conscious of quality and true to the genuine inner urge of poetic inspiration, his poetic output has not perhaps been in proportion with the stretch of his career. Besides *Kavita-Samgraha* in two volumes and *Gadya-Samagra* in seven volumes, both yet to be completed, the author has more than twenty books of poems–including two volumes of poetry in translation, twenty-five books of prose and ten juvenilia apart from translations of Girish Karnad's *Hayavadana* and *Raktkalyan*. He has more than a dozen of edited books to his credit, besides the later volumes of *Rabindra-racanavali* which he did almost single-handedly, in particular the two volumes of hitherto uncollected writings of Tagore and the final one, a monumental compendium of information related to Tagore's works.

He has reinterpreted the truth of poetry anew for the post-Tagorean Bengali literature. His poems touch upon the basic chords of human sensibility; his undertones are more effective than hundred pronouncements. Once read, these

का एक उदाहरण प्रस्तुत किया। आपकी दृष्टि और वाणी पाठकों को भावनाओं को उदात्त बनाती है और उन्हें प्रेरित करती है।

पिछले कुछ समय से, आपके भीतर का कवि शब्दों को फुसफुसाहट से स्थानांतरित कर रहा है और ख़ामोशी में कविताएँ रच रहा है। शब्द दिन-प्रतिदिन निरर्थक होते जाते हैं, तथापि इन सबसे आप एक सौन्दर्यपरक, प्रामाणिक समग्र काव्य रच सकते हैं जहाँ वैयक्तिक घटक कभी नहीं प्रदर्शित किए जाते। अपने वैयक्तिक स्वर और अपनी स्वयं की शैली की तलाश के अतिरिक्त, आप अपने समय और अपने लोगों को परिभाषित करने में जुटे रहते हैं।

अपने हर नए कविता-संग्रह के प्रकाशन के साथ आप नई ऊँचाइयों को छूते रहे हैं और काव्य-संवेदना की अपरिमित गहराइयों को नापते रहे हैं। आपकी कुछ प्रमुख कृतियाँ हैं : *आदिम लता गुल्ममय* (1972), *बाबरेर प्रार्थना* (1976), *प्रहार जोड़ा त्रिताल* (1982), *धूम लेगेछे हृत्कमले* (1987), *गांधर्व कविता गुच्छ* (1994) और *चाँदेर भीतरे एतो अंधकार* (1999)। त्रासद संतुलन को साधने के लिए क्रोध, व्यंग्य और इसकी सहगामी निराशा भी आपके यहाँ चली आती है। आपका नवीनतम कविता-संग्रह *जल-ए पाषाण हए आछे* (2004) अपने शीर्षक से इस रूपांतरण को प्रतीकित करता है।

एक समालोचक के रूप में शंख घोष समकालीन बाङ्ला साहित्यिक परिदृश्य में ऊँचाई पर खड़े नज़र आते हैं। बोध और विद्वत्ता इतने अंतरंग रूप से सम्मिश्रित कम ही नज़र आते हैं, जितनी कि आपमें। अति सतर्क तथ्यपूर्ण जाँच से पुष्ट संश्लिष्ट पाठ-विश्लेषण आपके संवेदनशील समालोचनात्मक अनुसंधान के आधार प्रस्तुत करते हैं। अपनी सभी जटिलताओं के साथ रवीन्द्रनाथ-कालीन और उत्तर रवीन्द्रनाथ-कालीन साहित्य की सर्वोत्कृष्ट समालोचना माना जानेवाला आपका गद्य लेखन उन मुद्दों और विषय वस्तुओं को उजागर करता है जो आंतरिक अर्थों को सर्जनात्मक संवेदनशीलता के साथ खोलते हैं। संभवतः रवीन्द्रनाथ को एक व्यापक सर्जनात्मक मस्तिष्क के साथ समझने का यह प्रथम सफल प्रयास है।

तथापि यह लग सकता है कि रवीन्द्रनाथ के विद्वान के रूप में आपकी ख्याति ने एक क़द्दावर समालोचक के रूप में आपकी उपलब्धि को पूरी तरह उजागर नहीं होने दिया है। एक कवि के रूप में आपसे अपेक्षा की जाती है कि आप काव्यकला के बारे में अधिक लिखेंगे। लेकिन आपके समालोचनात्मक लेखन का संदर्भ संभवतः विचारों के व्यापक आंदोलन के प्रसंग में इसे समस्यापरक बनाता रहा है। यही कारण है कि आप दूसरी भाषाओं के साहित्यों में बग़ैर किसी बेगानेपन के भाव के मुक्त रूप से विचरण करते रहे हैं। वस्तुतः आप ईमानदारी से परंपराओं को व्यापकता प्रदान करने की वकालत करते रहे हैं जो कि आपकी निबंधों की एक प्रमुख पुस्तक का शीर्षक भी है—*ऐतिह्येर विस्तार* (1989)। इसके साथ ही आप संस्कृति के हस्तक्षेप से उठनेवाली समस्याओं से भी पूर्णरूपेण परिचित हैं जिसे आप कई स्तरों पर और सृजनात्मक गतिविधियों के विभिन्न क्षेत्रों में संबोधित करते हैं। इस प्रक्रिया में हम आपको एक आश्चर्यप्रद और अतिशय मौलिक सैद्धांतिक स्थिति की कल्पना करते और उन्हें एक तार्किक परिणति तक पहुँचाते पाते हैं। जबकि *निःशब्देर तर्जनी* (1971), *शब्द आर सत्य* (1982), *कल्पनार हिस्टीरिया* (1984), *कविता लेखा कवितापद* (1989), *कविर बर्मा* (1998), *इसारा अविरत* (1999) जैसी कृतियाँ साहित्य को सामान्य रूप से

pervade the readers' consciousness so deeply that it becomes almost impossible to escape their impact. Generally recognized as a poet of the 50s, he does not belong to any particular literary coterie or any trendy vogue of his times. Rather, with his maturity and poise, he sets an example of literary eclecticism. His is a vision and a voice that elevates and enkindles readers' emotions.

For some time now, the poet in him had been trying to replace words by whispers and sculpt poems in silence. Words became commonplace experiences everyday, yet from these he could create an aesthetic, authentic total poetry where individual components never showed up. Besides this discovery of his personal voice and a style bearing his own imprint, he remains assiduously engaged in interpreting the times and the people he belongs to.

As it were, he has been scaling new heights and reaching unfathomable depths of poetic sensibility with the publication of any new volume of poems. Here, one can mention some like *Adim latagulmamay* (1972), *Babarer prarthana* (1976), *Praharjoda trital* (1982), *Dhum legeche hrtkamale* (1987), *Gandharva kavitaguccha* (1994) and *Chander bhitare aeto andhakar* (1999). Anger, sarcasm and its concomitant despair have paved the way, as it were, for a realization of tragic equilibrium. His latest book of poems, as of now, bears a title which is symptomatic of this transformation: *Jal-i pashan haye ache* (Water shapes to stone, 2004).

As a critic, Sankha Ghosh towers over the contemporary Bengali literary scene. Perception and scholarship seldom combine as inextricably as they have in him. Intricate textual analyses backed up by meticulous factual findings provide the basis for his sensitive critical explorations. Considered to be the finest critique of Tagorean and post-Tagorean literature with all its complexities, his prose writings highlight issues and themes unravelling the inner meanings with creative sensibility. Perhaps his has been the first successful endeavour to understand Tagore as a comprehensive creative mind.

Yet one may feel that his reputation as a Tagore scholar has unduly put to shade his true standing as a towering critical faculty. As a poet it is quite expected of him that he would be writing more on the art of poetry. But the benchmark of his critical writings has perhaps been to problematize the particular in the context of a wider movement of ideas. That is how he moves freely in literatures of other languages without any feeling of 'othering,' ever. In fact, he earnestly pleads for 'broadening of tradition' which has lent the title to one of his major book of essays, *Aitihyer vistar* (1989). At the same time he is fully aware of the problems emanating from the interpellations of culture which he addresses on multiple levels and in various areas of creative activity. In the process we find him assuming an amazing and extremely original theoretical position and giving them a logical viability. While books like *Nihsabder tarjani* (1971), *Sabda ar satya* (1982), *Kalpanar hysteria* (1984), *Kavitalekha kavitapada* (1989), *Kavir barma* (1998), *Isara avirata* (1999) were based on the experiences of reading literature in general,

पढ़ने के अनुभवों पर आधारित थीं, *ई अमीर आवरण* (1980), *निर्माण आर सृष्टि* (1982) और *कविर अभिप्राय* (1994) जैसी कृतियाँ उनके रवीन्द्रनाथ की समझ पर आधारित।

वैयक्तिक निबंधों (*जर्नल*, 1985; *घूमिए पड़ा अल्बम*, 1986) और उपाख्यानपरक संस्मरणों (*बाइर घर*, 1996; *एखन सब अलीक*, 1997; *समयेर जलछबि*, 1998) के क्षेत्र में भी आप कम सफल नहीं हैं। यहाँ तक कि आपके किशोर लेखन ने भी बड़े हो रहे बच्चों का मन जीत लिया है। आप अपनी 'लिमरिक्स' अथवा कथात्मक रचनाओं के पाठकों को निरा बच्चा नहीं मानते और उन्हें संरक्षित करने के लिए मुद्दों को हल्का नहीं बनाते। इसका तात्पर्य यह नहीं कि आप उनके सामने प्रौढ़ों की दुनिया को उजागर करते हैं; लेकिन आप उन्हें इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि वे चीज़ों को गहरी अनुभूति और सहानुभूति से समझ सकें।

आपको मधुर कंठ का वरदान मिला है और दैनंदिन जीवन में नाटक तथा साहित्य की समझ; आपने आकाशवाणी, दूरदर्शन और कुछ अतिविशिष्ट संगीत के कार्यक्रमों की स्क्रिप्ट लिखने का एक मॉडल भी तैयार किया है, यद्यपि जिसे प्राप्त कर पाना बहुत कठिन है। आपकी स्वयं की पढ़ी गई कविताओं की सी.डी. (*मुखेर पाथरछबि*, 2004) इस वर्ष के आरंभ में जारी की गई। यह जानना प्रीतिकर होगा कि घोष जिन विधाओं में लेखन करते रहे हैं, एक दशक से अधिक की अवधि तक वे उनमें सबसे अधिक बिकनेवाले रचनाकार रहे हैं। लेकिन उल्लेखनीय बात यह है कि इसने प्रयोगशीलता की आपकी प्रवृत्ति पर कोई प्रभाव नहीं डाला—चाहे वह आपके विचारवस्तु में हो या प्रस्तुति-रूप में। लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि आप इतनी सामाजिक मान्यता के बावजूद जहाँ तक संभव है प्रच्छन्न रहना ही पसंद करते हैं।

ऐसे महत्त्वपूर्ण कवि, कथाकार एवं समालोचक को अपना सर्वोच्च सम्मान, महत्तर सदस्यता अर्पित करते हुए साहित्य अकादेमी स्वयं को गौरवान्वित महसूस कर रही है।

E amir avaran (1980), *Nirman ar srsti* (1982) and *Kavir abhipray* (1994) were specifically founded on his understanding of Tagore.

He has been no less successful with his personal essays (*Journal*, 1985; *Ghumiye pada album*, 1986) and anecdotal reminiscences (*Baier ghar*, 1996; *Aekhan sab alik*, 1997; *Samayer jalchabi*, 1998). Even his children's writings have won the hearts of growing kids. He hardly treats the readers of his limericks or fictional writings as mere children and never dilutes issues to protect them. It does not mean that he bares the adult world to them; but he can present it in a way that may make them understand things with more feeling and sympathy.

Gifted with an exquisitely sonorous voice and a sense of drama in everyday life and literature, he has also set a model – though rather high to attain – of script-writing for Akashvani, Doordarshan and some very special musical programmes. In the midst of such losses, it is heartening to note that his CD recording of recitations from his own poems (*Mukher patharchabi*, 2004) has been published early this year.

It is reported that Sankha Ghosh has remained among the best sellers of the genres he writes in for more than a decade now. But what seems to be noteworthy is that it has not left any mark on his penchant for experimentation – be it in his thought content or the form of presentation. But to cap everything, all those who have known him for long and intimately, attest that it is perhaps even more rewarding to know the man who even after such social acclaim prefers to remain as incognito as possible.

Sahitya Akademi is honoured by conferring its highest honour, the Fellowship, on Sankha Ghosh, the acclaimed Indian poet and critic in Bengali.